International Journal of Applied Research 2016; 2(3): 375-377

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR2016; 2(3): 375-377
www.allresearchjournal.com
Received: 17-01-2016
Accepted: 18-02-2016

संदीप कुमार
गांव माधोसिंगाना, जिला सिरसा।

Correspondence
संदीप कुमार
गांव माधोसिंगाना, जिला सिरसा।

'चारू चन्द्र लेख' उपन्यास की पात्र–योजना

संदीप कुमार

प्रस्तावना

यह आचार्य द्विवेदी जी की द्वितीय औपन्यासिक रचना है। इसका प्रकाशन 'बाणभटट की आत्मकथा' के लम्बे अंतराल के पष्चात सन् 1963 में हुआ। प्रथम उपन्यास में जहाँ उन्होंने हर्शवर्धन के काल पर लेखनी चलाई थी वही इस उपन्यास में उनकी लेखनी दसवीं, ग्यारहवीं और विवादास्पद स्थितियों पर प्रवाह के साथ अग्रसर होती चली गयी है इस उपन्यास में मध्यकालीन तंत्र–मंत्र तथा साधना का वर्णन कर लेखक ने अतीव कुशलता से इसकी असफलताओं की व्यंजना प्रस्तुत की है। नवलकिशोर जी के शब्दों मे–''चारूचन्द्र लेख अद्भुत उपन्यास है जो मध्यकालीन भारत की तान्त्रिक साधनाओं का आलेख है, एक प्रेमकहानी है, 12,13 वीं शदी के भारत की राजनीतिक दशा का चित्र है अतीत के पुनरूवेशण तथा वर्तमान के प्रक्षेपण एवं भविश्य के निदर्शन का प्रयास है और इन सबके अतिरिक्त एक प्रतीक कथा है''[1] उपन्यास का कथानक चमत्कारों के इन्द्रजाल से अभिमंडित है। स्थान–स्थान पर चमत्कारों के विविध रूपों का आध्यात्मिक संयोजन होने के कारण कृति में साहित्यकर्ता का अभाव हो गया है। यह उपन्यास भारतवर्श के उस अंधकारमय युग पर प्रकाश डालता है। जिसमें सारी व्यवस्थाएं विश्रखलित हो गयी थी और समस्त जीवन विकृत, धर्म और कुत्सित राजनीति का गुलाम हो गया था। सामाजिक जीवन में जडता व्याप्त हो गयी थी। पूरा देश कुण्ठा और हीनमान्यता से ग्रस्त था। लगातार विदेशों से आक्रमण हो रहे थे। अतीत से कटे और सांस्कृतिक आदर्शों से शून्य भारतवर्श उन्हें रोकने में असमर्थ पा रहा था। समिष्टगत चेतना के अभाव ने जनमानस को व्यक्ति गत स्वार्थों के छोटे–छोटे पैरों में बन्धित किया था। 'चारूचन्द्र लेख' में घटनाओं का घटाटोप है वैसे ही पात्रों की बहुलता भी है। उपन्यास चरित्र प्रधान है। लेकिन एक भी जीवंत व्यक्तित्व वाला पात्र नही है। सभी के चरित्र एक दम सपाट है। द्विवेदी जी ने इस उपन्यास में सर्वथा नयी भूमि पर इतिहास पुराण का सर्जनात्मक उपयोग किया है। तान्त्रिक साधनाओं को लेकर लिखा गया यह पहला उपन्यास है और परम्परा का अन्वेशण करते हुए द्विवेदी जी ने जनतान्त्रिक मानववादी दृष्टि को प्रतिष्ठित किया गया है। बत्तीस अनुछेदों में विभक्त इस उपन्यास में द्विवेदी जी ने यही कहना चाहा कि तंत्रमंत्र से देश की रक्षा नहीं की जा सकती। उन्होंने इस तथ्य का भी अनावरण किया है कि की सार्थकता पति के प्रति पूर्ण समर्पण में है न कि भ्रमपूर्ण जंजालों में उलझकर भटकने में।

प्रस्तुत उपन्यास के सन्दर्भ मे यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी ने अपनी मौलिक कथासृष्टि के द्वारा इतिहास के एक कालखण्ड के सन्दर्भ में मानवीय संकट का ऐसा चित्र उपस्थित किया है जो समय की सीमाओं को तोड़कर अखण्ड मानवीय चेतना को रूपांत्रित करता है उसमे अतीत की पुकार है और वर्तमान की अनगूंज भी। मध्यकाल की जडिमा को जिस आधुनिक केन्द्र परिदृश्य में रखा गया है वह हमारी वृत्ति को स्पन्दचेता बनाता है। आज की समस्यओं को एक विशेष धर्मावृत्त दायित्वपूर्ण सन्दर्भ में रखता है।''[2]

कान्यकुब्जेश्वर महाराज जयित्रचन्द्र गाहडवार एक बार विद्याधर भट्ट तथा नौ अनुचरों के साथ दिल्ली अजमेर की ओर तुर्कों की प्रकृति और उनके रण कौशल का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करने के लिए जा रहे थे। मार्ग में उन्हें समाचार मिला की पृथ्वी राज की सेना महोबा पर आक्रमण करने के लिए चढ़ पड़ी है। अतः राजा की टोली राज्य ओर लौट पड़ी।

उधर संयोगवश परिमर्दिदेव की और से कन्या चन्द्रप्रभा कुछ अनुचरों और सेविकाओं के साथ अपने अमंगल–नाश के लिये काशी–यात्रा पर जारी थी। मार्ग में चन्दप्रभा पर सहसा पर संकट आ पड़ा। सुरक्षित समझे जाने वाले कान्यकुब्ज–क्षेत्र में विदेशियों ने प्रवेश करके चन्द्रप्रभा की शिविकाओं पर आक्रमण कर दिया। महाराज जयित्रचन्द्र की एकादश सदस्यी टोली ने प्राणों की बाजी लगाकर चन्द्रप्रभा की रक्षा की। "राजबाला चन्द्रप्रभा को महाराज जयित्रचन्द्र के अश्व पर उनके साथ बैठकर भागने को विवश होना पड़ा।"[3] इस प्रकार जयित्रचन्द्र और परिमर्दिदेव का संयुक्त संयोग वश चन्द्रप्रभा की कुटी में पलने लगा, कुन्ती की कोख से कर्ण की भांति।

एक कृषक बाला अपने बांध्यव्य के कलंक को धोने के उद्देश्य से काशी गयी थी। उसे काशी के प्रसिद्ध ज्योतिषी विद्याधर भट्ट मिले, जिन्होंने भविश्यवाणी की "माता तुझे संतान–सुख तो है, संतान नहीं है।"[4] ज्योतिशी के निर्देशानुसार कृषक दम्पति ने विश्वनाथ मन्दिर में प्रार्थना–प्रतीक्षा की। महाशिवरात्रि के ब्रह्म मुहूर्त में एक साधु ने उन्हें जगाया "कैसे सो रहे हो नन्हा बच्चा इतना रो रहा है।"[5] कृषक बाला ने क्षोमवस्त्र सुन्दर नन्हीं बालिका को उठाया। साथ में पॉच स्वर्ण मुद्राएं और कम्पित कर से लिखा छोटा पत्र था। अभ्यस्त कम्पित करने केवल इतना लिखा था– "शौभाग्यवती माता को अपराधिनी माता की भेंट।"[6] यह अपराधिनी माता थी चन्द्रप्रभा और उनकी बालिका चन्द्रलेखा। चन्द्रप्रभा के समान ही रूपाभा में उसकी कन्या चन्द्रलेखा अप्रतिम थी। चन्द्रलेखा जयित्रचन्द्र और परिमर्दिदेव का संयुक्त विग्रह थी, दो श्रेष्ठ राजवंशों के संयुक्त प्रताप की प्रतिमा थी चन्द्र लेखा कुलाभिमान का शरीरधारी तत्व था।

उच्च कुल में उत्पन्न चन्द्रलेखा का भरण–पोषण हुआ सामान्य कृषक परिवार में और उसकी जात–पात अज्ञात होने के कारण उसके लिए वर नहीं मिल पा रहा था। उसकी उम्र उन्नीस वर्ष हो गयी थी। उसकी कोई भी सम–वयस्का अब ग्राम में अविवाहित नहीं बची थी। परन्तु उसके माता–पिता को उसके विवाह की चिन्ता नहीं हैं। उन्हें काशी के ज्योतिषी की भविष्यवाणी–"कोई प्रतापी राजा स्वयं बरेगा"[7] पर विश्वास है।

किशोरी चन्द्रलेखा नित्य गंगा स्नान को जाया करती थी। वही नित्य एक कृच्छाधारी तरूण तापस को देखा करती थी। एक दिन साहस करके चन्द्रलेखा ने तपस्वी से बात की ओर उससे कृच्छाचार त्यागने का आग्रह किया। तपस्वी अभिभूत हो गया। उसने चन्द्रलेखा के सुप्त देवत्व को जगाा दिया, यह कहकर कि कौन कहता है कि तुम सामान्य ऋषिबल–किशोरिका हो तुममें रानी के सब लक्षण हैं। तुम रानी से भी बड़ी सिद्ध–योगिनी बनने के लिए पैदा हुई हो।"[8] उसने तरूण तापस के लिए भोजन बनाया। तापस श्रृद्धा भाव से भोजन करने के लिए उपस्थित भी हुआ परन्तु घर–गांव वालों ने तपस्वी को भगा दिया। चन्द्रलेखा तपस्वी के अपमान से आहत हुई और भोजन छोड़ बैठी। आधी रात को वह भोजन का थाल औश्र जल का भृगांर लेकर तापस की खोज में जंगलों की ओर निकल पड़ी। वहीं उसकी भेंट उज्जयिनी के राजा से, आकस्मिक रूप से हो गयी। उसका पूर्व में देखा स्वप्न आज सत्य सिद्ध हो गया। उसका स्वप्न था– "वह एक छोटी सी सोने की चिड़िया है, जो सोने के पिंजरे में बन्द है। न जाने कितने लोग पिंजरा तोड़कर ले जाने को आये परन्तु पिंजरा टूटा नहीं, अन्त में घुड़सवार आया और पिंजरा ही उठाकर चलता बना।"[9]

चन्द्रलेखा निकली थी तपस्वी को खोजने औश्र जन्म–जन्म के साथी अवन्तिका नरेश को पाकर राजमहिषी बनकर राजभवन पहुंचती है और राजा को सातवाहन नाम देती है। उसने सातवाहन से अनुरोध किया था मुझे अधिक छूट मत देना। पर राजा चन्द्रलेखा से प्रभावित होते गये। बत्तीस लक्षणों से युक्त, पूर्ण बनने के बाद, सिद्ध–योगिनी बनने के लिए रसायन–विद् नागनाथ के साथ कोटिवेधी रस सिद्ध करके जगत को रोग–जरा मृत्यु से मुक्त कराने के लिये राजा की आज्ञा लेकर राजभवन छोड़ देती है। राजा विवश होकर अपनी जन्म–जन्म संगिनी, मदनश्री को साधना हेतु अनुज्ञा देते हैं।

चन्द्रलेखा के नासिका अग्र भाग में किंचित धनुषायित धीर शर्मा ने उसे पद्मिनी कहा था। नागनाथ भी परम सौन्दर्य चन्द्रलेखा को महिमामयी पराशक्ति कहते है। रानी के रूप और गुणों में सम्मोहन शक्ति विद्यमान है। सातवाहन रानी को पाकर अपने को पूर्णकाम मानता है। वह कहता है– "देवी मेरे लिए तुम्हारा रूप लावण्य ही सर्वस्व है। उसको पाकर अपने को चरितार्थ अनुभव कर रहा हूँ। इसके भीतर जो चिन्मय तेजोमय तत्व है। उसे पा जाऊं तो शक्तिशाली हो जाऊँगा।"[10] रानी सिद्ध योगिनी बनने के चक्रवात में अपना सहज रूप खो बैठती मृगदृगी चन्द्रलेखा के नेत्र शंख वराटिका के समान उज्जवल होकर भी राग शून्य हो जाते हैं। परन्तु दुर्बलता भी उनकी क्रांति को क्षीण नहीं कर सकी थी। युद्ध में घायल हो जाने पर भी रानी निष्प्रभ नहीं है। "सुभ्र कोशेय वस्त्र से आगुल्फ आवेष्टित उनकी तन्वी अंगयष्टि क्षीर–सागर में खिली दमन व्यष्टि की शोभा को लजा रही थी।"[11] राजा पर हुए घुण्डकों के आक्रमण के समय उनकी रक्षा के लिए सन्नद्ध रानी महिषमर्दिनी का प्रतिरूप प्रतीत होती है।

चन्द्रलेखा ग्राम्या बलिका शास्त्र ज्ञान से अनभिज्ञ है परन्तु वह साक्षर है। वह मैना के द्वारा राजा को पत्र लिखकर भिजवाती है। वह चित्र–कर्म भी जानती हैं। वह अपने हाथ से बनाया राजा का अश्वारोही चित्त सदैव साथ रखती थी। वह ज्ञानवती है क्रोध को पाप समझती है। युद्ध में घयल हो जाने पर वे राजा से कहती हैं– "महराज, मुझे क्रोध आ गया था। यह तपोभ्रंश का लक्षण है, महाराज, क्रोध झूठे अभिमान का चिन्ह है, हर काम में अपने को अधिक महत्वपूर्ण मानने का परिणाम।"[12] चन्द्रलेखा का चरित्र समता भाव समन्वित है। आखेट–भीत मृगशाचक चन्द्रलेखा की गोद में निश्चित भाव से उसी प्रकार छिप जाता है जिस प्रकार मां की गोद में शिशु। राज रानी होकर भी वह जन–जन को जरा–मृत्यु से मुक्त कराने के लिये कोटिबेधी रस की सिद्धि हेतु स्वयं ही कष्ट क्लेश का वरण करती है।"[13] राजा व्यष्टि दृष्टि से अभिभूत थे, रानी समश्टि दृश्टि अपनाना चाहती थी। राजा की ओर से ममता और रानी की ओर से समता बोलती थी।[14] वह स्वयं सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहती है– "युद्ध तलवार की लड़ाई को नहीं कहते, यह तो उसका अंग मात्र है। सीमा पार के दस्युओं की यह धारणाबद्ध मूल हो गयी है कि देश की प्रजा को आसानी से निगला जा सकता है। बेटियां और बहुएं अवमानना का शिकार होती हैं। वीरो दुर्बल और विभाजित हुए रहना भयंकर पाप के प्रति उत्तरदायी हैं। हमें ऐसा करना है कि सारी प्रजा एक दुर्भेद्य चट्टान की भांति एक हो जाये और किसी को उसकी ओर आंख उठाने का साहस न रहे।"[15] संकल्पशीलता रानी का एक और गुण है। चाहे तरूण तपस्वी की खोज हो, चाहे कोटिबेधी रस–सिद्ध का कार्य हो, सर्वत्र रानी में संकल्प की दृढ़ता प्रतीत होती है। रानी कुलाभिमान को व्यर्थ मानती है। उसके प्रति अभिभूत हुए राजा से वह कहती है– "चन्द्रलेखा परिर्मिदेव और जयित्रचन्द्र के रक्त की प्रतिनिधि होने से कुछ अधिक गौरव की अधिकारिणी हो गयी है? यदि ऐसा सोचते हो तो ठीक नहीं सोचते। आर्यावर्त के विनाश का सेतु व्यर्थ का कुलाभिमान है।"[16] सिद्ध विच्युत रानी का मन अनुताप की अग्नि से तपकर पावन हो जाता है। वे तपस्विनी, नाटीमाता और विष्णुप्रिया के सम्पर्क में आकर पुनः पति–अनुरक्ता हो जाती है। वे सखी मैना से कहती है – "सिद्ध योगिनी नहीं, महा अधम हूँ। मैंने हीरा पाया और उसे जलती रेत में फेंक दिया।"[17] चन्द्रलेखा में आकर्षण है, दृढ़ता है, साहस है, उत्साह है, दया–सेवा सद्भाव हैं, प्रेम–प्रेरणा हैं, संकल्पशीलता हैं, और सबसे बढ़कर समता का भाव हैं। वह वनदेवी, विजयमनोज्ञा राजमहिषी, विमला, सिद्धि–स्वरूपा और अन्त में साक्षात् महिषमर्दिनी दुर्गा के रूप में चित्रित हुई है। चन्द्रलेखा वास्तव में लेखक की अमौलिक सृष्टि है।

निश्कर्श

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने चन्द्रलेखा का रूप–वर्णन पर्याप्त विस्तार से किया है। बत्तीस लक्षणों से युक्त चन्द्रलेखा को रूप वंशानुक्रम से ही मिला है। वह परिमर्दिदेव और जसित्रचन्द्र का सम्मिलित विग्रह है। गंगा तट पर तरूण–तापस चन्द्रलेखा के रूप विस्मित–अभिभूत होकर कहता है– "यह उन्नत ललाट, यह कुन्चित केश–राशि, यह दक्षिणावर्त रामराजि यह तिल–पुष्पवत् नासिका और सधन भृकुटियों के नीचे सधन अराल–रेख।" [18] अवन्तिका नरेश प्रथम भेंट में चन्द्रलेखा को वन में देखते है तो

उसे अरूण–पल्लव लता समझते है निकट पहुंचकर पाते है कि वह अपूर्व सुन्दरी देवबाला है। उसके घन–चिक्कन कुंचित केशों के मध्य सीमान्त रेखा ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो किसी ने अंधेरी रात में राजमार्ग पर दीया जला दिया हो।

संदर्भ सूची

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी – विश्वनाथ तिवारी – पृ0 201।
2. शांति निकेतन से शिवालिक, सं0 डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0 277।
3. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 63।
4. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 27।
5. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 29।
6. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 29।
7. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 27।
8. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 18।
9. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 27।
10. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 67।
11. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 201।
12. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 156–157।
13. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 91।
14. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 71।
15. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 71।
16. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 66–67।
17. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 136।
18. चारू चन्द्रलेखा, पृ0 18।